प्रकाशन हेतु अनुमोदित

<u>छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर</u>

<u>विविध अपील क्र. 1000/2006</u>

अपीलार्थी (आवेदक) : हितेंद्र कुमार दीवान

<u>विरुद्ध</u>

प्रत्यर्थी (दावेदार**)**: श्रीमती किरण वर्मा व अन्य

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

दिनांक 04-03-2010 हेतु सूचीबद्ध

सही /-
एन. के. अग्रवाल
न्यायाधीश

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

विविध अपील क्र. 1000/2006

अपीलार्थी (आवेदक) : हितेंद्र कुमार दीवान

विरुद्ध

प्रत्यर्थी (दावेदार): श्रीमती किरण वर्मा व अन्य

सिविल प्रक्रिया संहिता की आदेश-43 नियम 1(घ) के तहत विविध अपील

(एकल पीठ: माननीय श्री एन.के. अग्रवाल, न्यायाधीश)

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

उपस्थित: श्री प्रफुल्ल भारत, अधिवक्ता, अपीलार्थी की ओर से।

श्री ओम प्रकाश यादव, अधिवक्ता, प्रत्यर्थी क्रमांक 1 से 3 की ओर से,

श्री सुभाष यादव, अधिवक्ता की ओर से उपस्थित।

श्री संजय एस अग्रवाल, अधिवक्ता, प्रत्यर्थी क्रमांक 7 की ओर से।

अन्य प्रत्यर्थियों की ओर से कोई उपस्थित नहीं।

आदेश

(दिनांक 4 मार्च, 2010 को पारित किया गया)

1. यह वर्तमान अपील तृतीय अपर मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, जगदलपुर (संक्षेप में 'अधिकरण') द्वारा विविध दावा प्रकरण क्रमांक 01/05 में पारित

दिनांक 04.07.2006 के अधिनिर्णय के विरुद्ध निर्दिष्ट है, जिसके द्वारा और जिसके तहत अपीलार्थी का सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश-9 नियम-13 के तहत एकपक्षीय अधिनिर्णय को अपास्त करने हेतु दायर किया गया आवेदन समय-वर्जित मानते हुए ख़ारिज कर दिया गया है।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि दिनांक 16.12.1998 को, अधिकरण ने दावा प्रकरण क्रमांक 21/97 के साथ-साथ अन्य दावा प्रकरण क्रमांक 22/97, 23/97 और 24/97 में अधिनिर्णय पारित किया, जिसमें दावेदारों के पक्ष में प्रतिकर अधिनिर्णीत किया गया, तथा यहाँ अपीलार्थी को वाहन के स्वामी के रूप में दायी ठहराया गया, और बीमा कंपनी को पॉलिसी के उल्लंघन के आधार पर प्रतिकर चुकाने के अपने दायित्व से वियुक्त कर दिया गया। अधिकरण ने दिनांक 27.07.1998 को अपीलार्थी के विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की, और तत्पश्चात् अपीलार्थी के विरुद्ध एकपक्षीय अधिनिर्णय पारित किया गया।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

3. यहाँ अपीलार्थी ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9 नियम 13 के तहत एक आवेदन, परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत एक अन्य आवेदन के साथ, अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर दायर किया कि अपीलार्थी ने अधिवक्ता नियुक्त किया था और वह मामले में अपने अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित होता था, और केवल आवश्यकता पड़ने पर ही अपीलार्थी

व्यक्तिगत रूप से अधिकरण के समक्ष उपस्थित होता था। उसे दिनांक 09.04.2005 को अपने अधिवक्ता मित्र श्री अरुण दास के माध्यम से दिनांक 16.12.1998 के अधिनिर्णय के बारे में पता चला, और तभी उसे ज्ञात हुआ कि अधिकरण ने 27.07.1998 को उसके विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की थी। यह भी कहा गया था कि अन्य समान मामलों में, बीमा कंपनी को दायी ठहराया गया है। उसके अधिवक्ता ने उसे मामले में एकपक्षीय कार्यवाही के बारे में कभी सूचित नहीं किया, और इसलिए, एकपक्षीय डिक्री/अधिनिर्णय को अपास्त किया जाना चाहिए, और यदि कोई विलंब हुआ है, तो उसे क्षमा किया जाना चाहिए।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

4. अपीलार्थी ने स्वयं की परीक्षण कराई, किंतु प्रत्यर्थी द्वारा किसी की भी परीक्षण नहीं कराई गई। अधीनस्थ न्यायालय ने अपने आक्षेपित आदेश द्वारा, अपीलार्थी द्वारा दायर आवेदन को समय-वर्जित मानते हुए खारिज कर दिया।

5. श्री प्रफुल्ल भारत, विद्वान अधिवक्ता अपीलार्थी की ओर से उपस्थित, **एन. बालकृष्णन विरुद्ध एम. कृष्णमूर्ति**[1] और **एम.के. प्रसाद विरुद्ध पी. अरुमुगम**[2] के मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर अवलंब लेते हुए यह निवेदन करते हैं कि अधीनस्थ न्यायालय ने अपीलार्थी के एकपक्षीय

[1] 1998 (7) SCC 123
[2] 2001 (6) SCC 176

अधिनिर्णय को अपास्त करने हेतु दिए गए आवेदन के साथ-साथ विलंब क्षमा करने के आवेदन को खारिज करके त्रुटि की है।

6. तद्नुसार, श्री संजय एस अग्रवाल, प्रत्यर्थी क्रमांक 7/बीमा कंपनी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, ने **पी. मणि मूपनार विरुद्ध के. राजम्मल व अन्य**[3] के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलंब लेते हुए यह निवेदन करते हैं कि अधीनस्थ न्यायालय ने आवेदन को सही खारिज किया है और आदेश का बरक़रार रखे जाने योग्य है।

7. मैंने पक्षकारों की ओर से उपस्थित अधिवक्ताओं को सुना, आक्षेपित आदेश और अधीनस्थ न्यायालय के अभिलेखों का परिशीलन किया।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

8. यहाँ अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के अनुसार, उसके अधिवक्ता श्री तरुण चौहान ने उसे यह आश्वासन दिया था कि अपीलार्थी को व्यक्तिगत रूप से न्यायालय में उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं होगी और जब कभी भी उसकी उपस्थिति आवश्यक होगी, वह अपीलार्थी को बुला लेंगे। दिनांक 27.07.1998 को जब मामले में अपीलार्थी के विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की गई, तब अपीलार्थी को उसके अधिवक्ता द्वारा न तो बुलाया गया और न ही सूचित किया गया। उसे एकपक्षीय अधिनिर्णय के बारे में केवल 09.04.2005 को श्री अरुण दास, जो कि अपीलार्थी के मित्र हैं, से प्राप्त

[3] 2005 (11) SCC 800

जानकारी के आधार पर पता चला। प्रति-परीक्षण के पैरा-18 में, यह कथन किया गया है कि 1997 में लिखित कथन दायर करने के बाद से अपीलार्थी अब तक अपने अधिवक्ता के संपर्क में नहीं है।

9. सर्वोच्च न्यायालय ने **एन. बालकृष्णन** (पूर्वोक्त) के मामले में पैरा-8 से 13 में निम्नलिखित "टिप्पणी की गई है:

> "8. अपीलार्थी का आचरण समग्र रूप से उसे एक गैर-जिम्मेदार मुवक्किल के रूप में कलंकित करने का औचित्य नहीं रखता है। मुकदमे की पैरवी में उसने जो किया, वह सामान्यतः एक मुवक्किल के करने से बहुत अलग नहीं था। निस्संदेह, यह कहा जा सकता है कि उसे थोड़े-थोड़े अंतराल पर अपने अधिवक्ता से मिलकर मुकदमे की प्रगति की जाँच करके अधिक सतर्क रहना चाहिए था। लेकिन आजकल, जब हर कोई अपने जीवन के व्यवसाय में पूरी तरह व्यस्त है, तब ऐसी अतिरिक्त सतर्कता न अपनाने की चूक को उसे अपनी जिम्मेदारियों से अनभिज्ञ मुवक्किल के रूप में चित्रित करने और उसे कठोर परिणामों से दंडित करने का आधार नहीं बनाया जाना चाहिए।"
>
> 9. यह एक स्वयंसिद्ध सिद्धांत है कि विलंब का क्षमा न्यायालय के विवेक का विषय है। परिसीमा अधिनियम की धारा 5 यह नहीं कहती है कि ऐसे विवेक का प्रयोग तभी किया जा सकता है जब विलंब एक निश्चित सीमा के भीतर हो। विलंब की अवधि कोई मायने नहीं रखती है, स्पष्टीकरण की स्वीकार्यता ही एकमात्र कसौटी है। कभी-कभी सबसे कम अवधि का विलंब भी एक स्वीकृति स्पष्टीकरण के अभाव में अक्षम्य हो सकता है, जबकि कुछ अन्य मामलों में, बहुत लंबी अवधि का विलंब भी क्षमा किया जा सकता है, क्योंकि उसका स्पष्टीकरण संतोषजनक है। एक बार जब न्यायालय स्पष्टीकरण को पर्याप्त मानकर स्वीकार कर लेता है, तो यह विवेक के सकारात्मक प्रयोग का परिणाम होता है और

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

सामान्यतः वरिष्ठ न्यायालय को ऐसे निष्कर्ष को बाधित नहीं करना चाहिए, पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में तो और भी कम, जब तक कि विवेक का प्रयोग पूरी तरह से अस्थिर आधारों पर, या मनमाना या विकृत न हो। लेकिन जब प्रथम न्यायालय विलंब को क्षमा करने से इनकार कर देता है, तो मामला अलग होता है। ऐसे मामलों में, वरिष्ठ न्यायालय विलंब के लिए दर्शाए गए कारण पर नए सिरे से विचार करने के लिए स्वतंत्र होगा और ऐसे वरिष्ठ न्यायालय के लिए, अधीनस्थ न्यायालय के निष्कर्ष से अप्रभावित होकर भी, अपना निष्कर्ष निकालना खुला है।

10. इस तरह के भिन्न दृष्टिकोण का कारण यह है:

न्यायालय का प्राथमिक कार्य पक्षकारों के बीच विवाद का न्यायनिर्णयन करना और सारभूत न्याय को आगे बढ़ाना है। विभिन्न स्थितियों में न्यायालय के समक्ष आने के लिए निर्धारित समय-सीमा इसलिए नहीं है कि ऐसे समय की समाप्ति पर एक बुरा वाद एक अच्छा वाद में बदल जाएगा।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

11. परिसीमा के नियम पक्षकारों के अधिकारों को नष्ट करने के लिए नहीं बनाए गए हैं। उनका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि पक्षकार विलंबकारी युक्तियों का सहारा न लें, बल्कि शीघ्रता से अपना उपचार प्राप्त करें। विधिक उपचार प्रदान करने का उद्देश्य विधिक क्षति के कारण हुई हानि की मरम्मत करना है। परिसीमा का कानून इस प्रकार की गई विधिक क्षति के निवारण के लिए ऐसे विधिक उपचार की एक जीवन अवधि निर्धारित करता है। समय मूल्यवान है और नष्ट हुआ समय कभी वापस नहीं आता। समय बीतने के दौरान, नए वाद उत्पन्न होते हैं, जिससे नए व्यक्तियों को न्यायालयों का दरवाजा खटखटाकर विधिक उपचार प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। इसलिए, प्रत्येक उपचार के लिए एक जीवन अवधि निर्धारित की जानी चाहिए। उपचार आरंभ करने के लिए असीमित अवधि असमाप्त अनिश्चितता और परिणामस्वरूप अराजकता को जन्म दे सकती है। इस प्रकार परिसीमा का कानून लोक नीति पर आधारित है। यह हित है कि राष्ट्र में मुकदमों की समाप्ति हो के सिद्धांत में सन्निहित है।

परिसीमा के नियम पक्षकारों के अधिकारों को नष्ट करने के लिए नहीं हैं। उनका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि पक्षकार विलंबकारी युक्तियों का सहारा न लें, बल्कि शीघ्रता से अपना उपचार प्राप्त करें। विचार यह है कि प्रत्येक विधिक उपचार को विधायी रूप से निर्धारित समय अवधि के लिए जीवंत रखा जाना चाहिए।

12. न्यायालय जानता है कि विलंब को क्षमा करने से इनकार करने का परिणाम यह होगा कि एक वादकारी अपना वाद प्रस्तुत करने से वंचित हो जाएगा। ऐसी कोई धारणा नहीं है कि न्यायालय के समक्ष आने में विलंब हमेशा जानबूझकर किया जाता है। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि *शकुंतला देवी जैन बनाम कुंतल कुमारी और पश्चिम बंगाल राज्य बनाम एडमिनिस्ट्रेटर, हावड़ा नगर पालिका* के मामलों में निहित सिद्धांत के अनुसार सारभूत न्याय को आगे बढ़ाने के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत शब्दों "पर्याप्त कारण" को उदारतापूर्वक समझा जाना चाहिए।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

13. यह याद रखा जाना चाहिए कि विलंब के हर मामले में, संबंधित मुवक्किल की ओर से कुछ चूक हो सकती है। केवल यही उसके निवेदन को अस्वीकार करने और उसके लिए दरवाजा बंद करने के लिए पर्याप्त नहीं है। यदि स्पष्टीकरण में दुर्भावना की गंध नहीं आती है या इसे विलंबकारी रणनीति के हिस्से के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है, तो न्यायालय को वादकारी के प्रति अत्यधिक विचार दिखाना चाहिए। लेकिन जब यह सोचने का उचित आधार हो कि विलंब जानबूझकर समय प्राप्त करने के लिए पक्षकार द्वारा किया गया था, तो न्यायालय को स्पष्टीकरण की स्वीकृति के विरुद्ध होना चाहिए। विलंब को क्षमा करते समय, न्यायालय को विपरीत पक्षकार को पूरी तरह से नहीं भूलना चाहिए। यह ध्यान में रखना चाहिए कि वह हारे हुए पक्षकार हैं और उसने भी काफी बड़े मुकदमेबाजी खर्च किए होंगे। यह एक स्वास्थ्यकर दिशानिर्देश होगा कि जब न्यायालय आवेदक की ओर से असावधानी के कारण विलंब को क्षमा करते हैं, तो न्यायालय

को उसके नुकसान के लिए विपरीत पक्षकार को मुआवजा देना चाहिए।

10.एम.के. प्रसाद (पूर्वोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 10 में निम्नानुसार अवलोकन किया है:

> 10. वर्तमान मामले में, अपीलार्थी ने एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने हेतु आवेदन दायर करने में हुई देरी को समझाने का प्रयास किया, जैसा कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत दायर किए गए उसके आवेदन और उसके स्वयं के शपथ पत्र से स्पष्ट है। यद्यपि अपीलार्थी उतना सतर्क नहीं रहा जितना उसे होना चाहिए था, फिर भी उसका समग्र आचरण उसे एक गैर-जिम्मेदार मुवक्किल के रूप में कलंकित करने का औचित्य सिद्ध नहीं करता है। उसे अधिक सतर्क रहना चाहिए था, लेकिन उसकी ऐसी अतिरिक्त सतर्कता न बरतने की विफलता को उस संपत्ति के संबंध में मुकदमे से बाहर करने का आधार नहीं बनाया जाना चाहिए था, जो सर्वसम्मति से मूल्यवान मानी जाती है। एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने के आवेदन पर निर्णय लेते समय, न्यायालय को आक्षेपित निर्णय, संपत्ति की सीमा और पक्षकारों के हित को ध्यान में रखना चाहिए था। हमारा मत है कि इस मामले में न्यायालय में अपीलार्थी की अनुपस्थिति के कारण प्रतिवादी को हुई असुविधा की क्षतिपूर्ति उचित और अनुकरणीय व्यय(खर्च) अधिनिर्णीत करके की जा सकती है। न्याय के हित में और मामले की विचित्र परिस्थितियों के तहत, हम आक्षेपित आदेश को अपास्त करते हैं और एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने के लिए आवेदन दायर करने में हुई देरी को माफ करते हैं। आगे की देरी से बचने के लिए, हमने मुख्य आवेदन के गुण-दोषों की जांच की है और हमारा मानना हैं कि एकपक्षीय डिक्री को भी अपास्त करने के लिए पर्याप्त आधार मौजूद हैं।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

11.पी. मणि मूपनार (पूर्वोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 4 और 5 में निम्नानुसार अवलोकन किया है:"

> 4. उच्च न्यायालय से यह अपेक्षित था कि वह 2598 दिनों की अत्यधिक देरी को माफ़ करने हेतु दर्शाए गए पर्याप्त कारण के प्रश्न की जाँच करे, जो उसने नहीं किया और इसके बजाय, मामले के गुण-दोषों पर एक समग्र दृष्टिकोण लेते हुए पुनरीक्षण याचिकाओं को अनुमत करने की कार्यवाही की।
>
> 5. हमारे विचार से, उच्च न्यायालय ने विलंब को माफ़ करने से इनकार करने वाले विचारण न्यायालय के आदेश को अपास्त करने में त्रुटि की है। उच्च न्यायालय के लिए यह खुला था कि वह प्रत्यर्थीयों द्वारा विलंब को माफ़ करने के लिए दिए गए स्पष्टीकरण को स्वीकार करे, किंतु दर्शाए गए पर्याप्त कारण पर विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को अपास्त किए बिना, उच्च न्यायालय के लिए विवाद के गुण-दोषों में प्रवेश करना और विलंब को माफ़ करना अनुमेय नहीं था।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

12.इसके अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय ने **सलिल दत्ता विरुद्ध टी.एम. एंड एम.सी. प्राइवेट लिमिटेड**[4] के मामले में पैरा 5, 7 और 8 में निम्नानुसार टिप्पणी की गई है:

> "5. चूँकि विचाराधीन निर्णय विशेष रूप से इस न्यायालय के ***रफीक*** मामले पर आधारित है, इसलिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि उक्त निर्णय वास्तव में क्या कहता है। अपीलार्थी, रफीक ने एक अधिवक्ता के माध्यम से इलाहाबाद उच्च न्यायालय में एक द्वितीय अपील दायर की थी। जब द्वितीय अपील सुनवाई के लिए उठाई गई तो उनका अधिवक्ता उपस्थित नहीं था, जिसके परिणामस्वरूप इसे व्यतिक्रम के लिए खारिज कर दिया गया। तब अपीलार्थी ने व्यतिक्रम के कारण खारिज करने के आदेश को अपास्त करने के

[4] 1993 (2) SCC 185

लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया जिसे उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया। उक्त आदेश की शुद्धता को इस सर्वोच्च न्यायालय में प्रश्नगत किया गया था। यह मामला डी.ए. देसाई (न्यायमूर्ति) और बहारुल इस्लाम,. (न्यायमूर्ति) की पीठ के समक्ष आया। डी.ए. देसाई, (न्यायमूर्ति) ने पीठ की ओर से बोलते हुए इस प्रकार से अवलोकन किया: (एस.सी.सी. पृष्ठ 789, पैरा 3)

> "मामले की विचलित करने वाली विशेषता यह है कि हमारी वर्तमान विरोधी कानूनी प्रणाली में जहाँ पक्षकार सामान्यतः अपने अधिवक्ताओं के माध्यम से उपस्थित होते हैं, पक्षकारों का दायित्व है कि वे अपने अधिवक्ता का चयन करें, उसे ब्रीफ करें, उसके द्वारा माँगी गई फीस का भुगतान करें और फिर शेष कार्य करने के लिए विद्वान अधिवक्ता पर भरोसा करें। पक्षकार एक ग्रामीण हो सकता है या ग्रामीण क्षेत्र से संबंधित हो सकता है और उसे न्यायालय की प्रक्रिया का कोई ज्ञान न हो। एक अधिवक्ता को नियुक्त करने के बाद, पक्षकार पूरी तरह से आश्वस्त रह सकता है कि अधिवक्ता उसके हितों की देखभाल करेगा। अपील की सुनवाई के समय, पक्षकार की व्यक्तिगत उपस्थिति न केवल आवश्यक नहीं है, बल्कि शायद ही उपयोगी हो। इसलिए, पक्षकार द्वारा कार्यवाही में प्रभावी ढंग से भाग लेने के लिए अपनी शक्ति में सब कुछ करने के बाद वह आश्वस्त रह सकता है कि न तो उसे यह पूछताछ करने के लिए उच्च न्यायालय जाना है कि उसकी अपील के संबंध में उच्च न्यायालय में क्या हो रहा है, और न ही उसे अधिवक्ता के लिए एक निगरानीकर्ता के रूप में कार्य करना है कि जब मामला सूचीबद्ध हो तो बाद वाला उपस्थित हो। यह उसके कार्य का हिस्सा नहीं है।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

7. प्रश्न यह है कि क्या उक्त निर्णय का सिद्धांत यहाँ प्रतिवादी/प्रत्यर्थी के बचाव में आता है। सबसे पहले, हमारे सामने वाले मामले में यह किसी बाहरी पक्षकार द्वारा दायर की गई अपील नहीं थी, बल्कि एक वाद था जिसे वाद के दायर होने के सात वर्ष बाद अंतिम सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया गया था। प्रत्यर्थी एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी है,

जिसका पंजीकृत कार्यालय कलकत्ता में ही है। प्रत्यर्थी-कंपनी के प्रभारी व्यक्ति न तो ग्रामीण पृष्ठभूमि के सीधे-सादे लोग हैं और न ही वे न्यायालयीन प्रक्रियाओं से अनभिज्ञ भोले-भाले निरक्षर व्यक्ति हैं। 9 जून, 1988 को वाद के अंतिम सुनवाई के लिए आने से पहले, प्रत्यर्थी ने दो आवेदन दायर किए थे, जिस पर न्यायालय ने आदेश दिया था कि उन पर वाद की अंतिम सुनवाई के समय विचार किया जाएगा। वादी का पक्ष निस्संदेह यह है कि उक्त आवेदन विलंबकारी रणनीति का हिस्सा थे जिसे प्रत्यर्थी-किरायेदारों द्वारा वाद को लंबा खींचने के उद्देश्य से अपनाया गया था। जो भी हो, इसके बाद प्रत्यर्थी ने न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने से इनकार कर दिया। प्रत्यर्थी के अनुसार, उनके अधिवक्ता ने उन्हें सलाह दी थी कि जब तक उनके द्वारा दायर किए गए अंतरिम आवेदनों का निपटारा नहीं हो जाता, तब तक प्रत्यर्थी को न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं है, जिसका अर्थ यह था कि प्रत्यर्थी को वाद की अंतिम सुनवाई में उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं है। यह याद रखा जाना चाहिए कि न्यायालय ने उक्त अंतरिम आवेदनों पर वाद की अंतिम सुनवाई के समय विचार करने का प्रस्ताव किया था। यह मानना कठिन है कि प्रत्यर्थियों ने अपने अधिवक्ता की सलाह पर आँख मूंदकर विश्वास कर लिया होगा। शिक्षित व्यवसायी होने के नाते, वे जानते होंगे कि वाद की अंतिम सुनवाई में भाग न लेने का परिणाम अनिवार्य रूप से उनके प्रतिकूल निर्णय होगा। वास्तव में, हम यह मानने को तैयार नहीं हैं कि अधिवक्ता द्वारा ऐसी कोई सलाह वास्तव में दी गई थी। कोई भी अधिवक्ता, जो अपने पेशे का सम्मान करता है, अपने मुवक्किल को ऐसी सलाह नहीं देगा। दूसरा, उनके बयान में कई विरोधाभास हैं, जिन्हें आक्षेपित आदेश में युगलपीठ द्वारा इंगित किया गया है, यह दर्शाते हैं कि पूरी कहानी बाद में गढ़ी गई है। उक्त अधिवक्ता के आचरण के संबंध में युगलपीठ के निर्णय में निम्नलिखित टिप्पणियाँ की गई हैं: "हमने पाया कि उक्त विद्वान अधिवक्ता ने कार्यवाही का संचालन अत्यंत अनुचित तरीके से किया और 10 जून, 1988 और उसके बाद की तारीखों में उनकी अनुपस्थिति न केवल अविनयपूर्ण थी, बल्कि संभवतः उनके मुवक्किल के प्रति कर्तव्य का परित्याग भी थी। विद्वान

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

अधिवक्ता 10, 11 और 13 जून, 1988 को क्या हुआ, इसके बारे में न्यायालय से पूछताछ न करके अपना पेशेवर कर्तव्य भूल गए थे। विद्वान अधिवक्ता ने मामले में अत्यंत लापरवाही तौर पर कार्य किया और विद्वान अधिवक्ता ने मामले को सबसे असामान्य तरीके से निपटाया। हमने यह भी पाया है कि उक्त विद्वान अधिवक्ता ने अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष दिए गए बयान में गंभीर विरोधाभास किए थे। विद्वान अधिवक्ता ने अपने बयान में कहा था कि उन्होंने 9 जून, 1988 को स्थगन के लिए कोई आवेदन दायर नहीं किया था। लेकिन अभिलेख से यह स्पष्ट था कि यह 9 जून, 1988 को दायर किए गए आवेदन के आधार पर ही था कि मामले को अगले दिन साक्षियों" की प्रतिपरीक्षा के लिए स्थगित कर दिया गया था, जिनके परीक्षण के लिए बुलाया गया था।" अधिवक्ता के बयान में बताए गए उपरोक्त तथ्य दर्शाते हैं कि उन्होंने वास्तव में 9 जून, 1988 को अगले दिन साक्षियों" की प्रतिपरीक्षा करने में सक्षम होने के लिए स्थगन हेतु एक आवेदन दायर किया था। इसलिए, उनका वर्तमान रुख कि उन्होंने अपने मुवक्किल को 9 जून, 1988 से आगे सुनवाई में भाग न लेने की सलाह दी थी, स्पष्ट रूप से असत्य है। इसलिए, हमारी राय है कि आदेश-9 नियम-13 के तहत प्रत्यर्थी द्वारा अपने आवेदन में प्रस्तुत की गई कहानी बाद में सोची गई है और युगलपीठ द्वारा 3 मार्च, 1992 के अपने आदेश में इसे स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था - खासकर जब उसने 8 जुलाई, 1991 के अपने पूर्व के निर्णय में इसी मामले को अस्वीकार कर दिया था।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

8. अधिवक्ता पक्षकार का अभिकर्ता (एजेंट) होता है। उसके कार्य और बयान, जो उसे दिए गए प्राधिकार की सीमाओं के भीतर किए जाते हैं, वे मूल पक्षकार अर्थात उसे नियुक्त करने वाले पक्षकार के ही कार्य और बयान होते हैं। यह सत्य है कि कुछ स्थितियों में, न्यायालय न्याय के हित में, अधिवक्ता की उपेक्षा और/या कदाचार के बावजूद, ख़ारिज करने का आदेश या एकपक्षीय डिक्री को अपास्त कर सकता है, यदि वह पाता है कि मुवक्किल एक निर्दोष प्रत्यर्थी था, लेकिन ऐसा कोई आत्यंतिक नियम नहीं है कि कोई पक्षकार किसी भी समय अपने अधिवक्ता का त्याग कर दे और अनुतोष की मांग करे। ऐसी कोई

आत्यंतिक उन्मुक्ति मान्यता प्राप्त नहीं हो सकती। ऐसा आत्यंतिक नियम इस प्रणाली के कार्यकरण को अत्यंत कठिन बना देगा। *रफ़ीक़* में की गई टिप्पणियों को उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए और इसे एक आत्यंतिक सिद्धांत के रूप में नहीं समझा जा सकता। जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है, यह एक विचाराधीन वाद था जो दायर किए जाने के सात वर्ष की अवधि बीत जाने के बाद अंतिम सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया गया था। यह किसी ऐसे ग्रामीण द्वारा दायर की गई दूसरी अपील नहीं थी जो उस शहर से दूर रहता हो जहाँ न्यायालय स्थित है। प्रत्यर्थी भी कोई सीधा-सादा अज्ञानी ग्रामीण नहीं है, बल्कि एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी है जिसका प्रधान कार्यालय कलकत्ता में ही है और जिसका प्रबंधन शिक्षित व्यवसायियों द्वारा किया जाता है जो जानते हैं कि उनका हित कहाँ है। यह स्पष्ट है कि जब उनके अंतरिम आवेदनों को अंतिम सुनवाई के लिए वाद उठाए जाने से पहले निपटाया नहीं गया, तो उन्होंने अप्रसन्नता महसूस की और न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने से इनकार कर दिया। शायद, जैसा कि वादी ने आरोप लगाया है, यह उनकी विलंबकारी रणनीति का हिस्सा था। शायद नहीं। लेकिन एक बात स्पष्ट है कि उन्होंने न्यायालय के साथ असहयोग करना चुना। न्यायालय के प्रति ऐसा रुख अपनाने के बाद, प्रत्यर्थी को उसकी अनुग्रह मांगने का कोई अधिकार नहीं है। पूरा दोष अधिवक्ता पर मढ़ना और यह जताने की कोशिश करना कि वे कार्यवाही की प्रकृति या महत्व से पूरी तरह से अनभिज्ञ थे, एक ऐसा सिद्धांत है जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है और जिसे स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

13. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ऊपर निर्दिष्ट वादों के निर्णयों में प्रतिपादित विधि के अभिमत के दृष्टिकोण से, कानून की स्थिति को निम्नलिखित रूप में संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

i. न्यायालय का प्राथमिक कार्य पक्षकारों के बीच के विवाद का न्यायनिर्णयन करना और सारभूत न्याय को आगे बढ़ाना है।

ii. विलंब का क्षमा न्यायालय के विवेकाधिकार का विषय है। परिसीमा अधिनियम की धारा-5 यह नहीं कहती कि ऐसा विवेकाधिकार तभी प्रयोग किया जा सकता है जब विलंब एक निश्चित सीमा के भीतर हो। विलंब की अवधि कोई मायने नहीं रखती, स्पष्टीकरण की स्वीकार्यता ही एकमात्र मानदंड है। कभी-कभी बहुत कम अवधि का विलंब भी किसी स्वीकार्य स्पष्टीकरण के अभाव में अक्षम्य हो सकता है, जबकि कुछ अन्य मामलों में, बहुत लंबी अवधि का विलंब भी क्षमा किया जा सकता है, क्योंकि उसका स्पष्टीकरण संतोषजनक होता है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

iii. यद्यपि अपीलार्थी उतना सतर्क नहीं रहा जितना उसे होना चाहिए था, फिर भी यदि उसका आचरण कुल मिलाकर उसे एक गैर-जिम्मेदार प्रत्यर्थी के रूप में लांछित करने योग्य नहीं है, तो उसकी ऐसी अतिरिक्त सतर्कता अपनाने में विफलता को उसे मुकदमे से बाहर करने का आधार नहीं बनाया जाना चाहिए था।

iv. विचारण न्यायालय को अत्यधिक विलंब को क्षमा करने हेतु दर्शाए गए कारण की पर्याप्तता के प्रश्न पर विचार करना आवश्यक था।

v. उच्च न्यायालय उत्तरवादीगण द्वारा विलम्ब को क्षमा करने के लिए दिए गए स्पष्टीकरण को स्वीकार करने के लिए स्वतंत्र है, किंतु कारण की पर्याप्तता पर विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को अपास्त किए बिना, उच्च न्यायालय के लिए विवाद के गुणों में प्रवेश करना और विलंब को क्षमा करना अनुमेय नहीं है।

vi. अधिवक्ता पक्षकार का अभिकर्ता होता है। उसके कार्य और बयान, जो उसे दिए गए प्राधिकार की सीमाओं के भीतर किए जाते हैं, वे मूल पक्षकार यानी उसे नियुक्त करने वाले पक्षकार के ही कार्य और बयान होते हैं। यह सत्य है कि कुछ स्थितियों में, न्यायालय न्याय के हित में, अधिवक्ता की उपेक्षा और/या कदाचार के बावजूद, बर्खास्तगी आदेश या एकपक्षीय डिक्री को अपास्त कर सकता है, यदि वह पाता है कि मुवक्किल एक निर्दोष प्रत्यर्थी था, लेकिन ऐसा कोई आत्यंतिक नियम नहीं है कि कोई पक्षकार किसी भी समय अपने अधिवक्ता का त्याग कर दे और अनुतोष की मांग करे।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

14. उपर्युक्त स्थापित विधि सिद्धांत को वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू करने से यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी पर न केवल एक मामले में, बल्कि दावा वाद संख्या 21/97, 22/97, 23/97 और 24/97 में भी एकपक्षीय कार्यवाही की गई है। वह ग्रामीण पृष्ठभूमि का व्यक्ति नहीं है,

बल्कि बस का मालिक है और इसके अलावा, वह न्यायालय की प्रक्रिया से अनभिज्ञ कोई निर्दोष प्रत्यर्थी नहीं है। उसके स्वयं के बयान के अनुसार, उसने 1997 के बाद से 2005 तक, यानी लगभग 7-8 वर्षों तक, अपने अधिवक्ता से कभी संपर्क करने का प्रयास नहीं किया। प्रत्येक पक्षकार जानता है कि दावा प्रकरण/दीवानी वाद में, लिखित बयान दाखिल करने के बाद पक्षकारों से साक्ष्य प्रस्तुत करने की अपेक्षा की जाती है। यह अत्यधिक असंभव है कि अपीलार्थी/ मुवक्किल अपनी ओर से घोर उपेक्षा किए बिना 7-8 वर्षों की अवधि के लिए अपने अधिवक्ता के संपर्क में नहीं रहेगा। खासकर तब, जब मुवक्किल/पक्षकार एक व्यवसायी है जो जानता है कि उसका हित कहाँ निहित है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

15. वर्तमान मामला अपीलार्थी द्वारा अपने वाद के अभियोजन में घोर उपेक्षा प्रतीत होता है। यद्यपि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 को सारभूत न्याय को आगे बढ़ाने के लिए एक उदार निर्माण प्राप्त होना चाहिए और आम तौर पर न्याय के हित में विलंब को क्षमा किया जा सकता है, परंतु जहाँ कोई पक्षकार इतना घोर उपेक्षावान है कि उसने लगभग 7-8 वर्षों तक अपने मामले की सतर्कता नहीं की, तो यह नहीं कहा जा सकता कि अधीनस्थ न्यायालय ने विलंब क्षमा करने के आवेदन को अस्वीकार करने में अपने विवेकाधिकार का मनमाने ढंग से प्रयोग किया है।

16. मामले की उपर्युक्त परिस्थितियों के आधार पर, न्यायालय का राय यह है कि अपीलार्थी एकपक्षीय अधिनिर्णय को अपास्त करने के लिए आवेदन दाखिल करने में हुए विलंब को क्षमा करने हेतु पर्याप्त कारण दर्शाने में विफल रहा है।

17. उपर्युक्त के दृष्टिगत, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, अपील सारहीन होने के कारण खारिज किए जाने योग्य है और इसे एतद्द्वारा **खारिज** किया जाता है । वाद-व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं किया गया है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

सही /-
एन. के. अग्रवाल
न्यायाधीश

अस्वीकरणः हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु **निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।**

Translated By - ADV. ANANDITA PRATHNA BEHRA